उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल

माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक कुमार वर्मा

03 फरवरी, 2022

फौजदारी प्रकीर्ण प्रार्थना–पत्र संख्या–
96 सन् 2022

मध्य

डॉ मृत्युंजय कुमार..... प्रार्थी

बनाम

उत्तराखंड राज्य और एक अन्य..... प्रत्यर्थी

प्रार्थी की ओर से अधिवक्ताः श्री करण आनंद।

प्रत्यर्थी/राज्य की ओर से अधिवक्ताः राज्य की ओर से विद्वान ब्रीफ होल्डर श्री पी.एस. उनियाल।

माननीय आलोक कुमार वर्मा, जे.

प्रार्थी/अभियुक्त डॉ. मृत्युंजय कुमार द्वारा विद्वान विशेष न्यायाधीश (विजिलेंस), देहरादून के समक्ष विचाराधीन सत्र परीक्षण परीक्षण सं0 01 सन् 2019 ''राज्य विरूद्ध मृत्युंजय कुमार मिश्रा'' मुकदमा अपराध संख्या–09 सन् 2018 अन्तर्गत धारा–120बी, 420, 467, 468, 471 भारतीय दण्ड संहिता तथा धारा–13(1)(a)(c)(d) सहपठित धारा 13(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में ''अधिनियम'', 1988) से सम्बन्धित आरोप–पत्र दिनांकित 28.02.2019 समन आदेश दिनांकित 02.03.2019 तथा वाद की पूर्ण कार्यवाही को अपास्त किये जाने हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे

''संहिता'' के रूप में आगे संदर्भित किया गया है) की धारा 482 के अन्तर्गत इस न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का आवाहन किया गया है।

2. आवश्यक तथ्य इस प्रकार है कि प्रार्थी द्वारा उत्तराखण्ड आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय, देहरादून (संक्षेप में ''विश्वविद्यालय'') के कुलसचिव का पद धारण किया गया था। विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति द्वारा प्रारम्भिक जांच आख्या संलग्न कर मुख्यमंत्री को सम्बोधित उसके पत्र दिनांकित 14.06.2018 द्वारा प्रार्थी द्वारा 2013 से 2017 की अवधि में बतौर विश्वविद्यालय का कुलसचिव की गयी वित्तीय अनियमितताओं के आरोप के सम्बन्ध में प्रार्थी के विरूद्ध जांच करने की संस्तुति की गयी थी। दिनांक 16.11.2018 को राज्य के अपर मुख्य सचिव द्वारा प्रकरण की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर अन्वेषण की संस्तुति की गयी। श्री प्रकाश सिंह, इंस्पेक्टर विजिलेंस द्वारा खुली विजिलेंस जांच सम्पादित की गयी। जांच उपरान्त उनके द्वारा प्रार्थी व सह–अभियुक्तगण के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गयी। अन्वेषण पूर्ण होने के उपरान्त आरोप–पत्र दाखिल किया गया।

3. अन्वेषण के दौरान इस आशय के साक्ष्य प्रस्तुत किये गये कि प्रार्थी द्वारा उसके सगे भाई की पत्नी को अवैध रूप से नियुक्त किया गया था। उनके द्व ारा झूठे रेल तथा हवाई यात्रा दर्शा कर प्रतिपूर्ति प्राप्त की गयी थी। उसने मैसर्स अमेजन ऑटोमेशन (देहरादून) तथा मैसर्स क्रियेटिव वर्ल्ड सॉल्यूटिंग (देहरादून) से विश्वविद्यालय के लिये अवैध रूप से कम्प्यूटर व इलेक्ट्रॉनिक वस्तुयें क्रय की थी। उपरोक्त फर्मों के स्वामी प्रार्थी के करीबी हैं।

4. आरोप पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात्, विशेष न्यायाधीश (विजिलेंस), देहरादून द्वारा संज्ञान लिया गया और प्रार्थी के विरूद्ध भा.दं.सं. की धारा–120बी, 467, 468, 471, 420 तथा अधिनियम, 1988 की धारा–13(1)(a)(c)(d) सहपठित धारा 13(2) के अन्तर्गत दिनांक 02.03.2019 को आक्षेपित समन आदेश पारित किया गया।

5. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री करण आनंद और राज्य के विद्वान ब्रीफ होल्डर श्री पी.एस. उनियाल को वीडियो कॉन्फ्रेसिंग के माध्यम से सुना।

6. श्री करण आनंद, प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि प्रार्थी की तैनाती से पूर्व विश्वविद्यालय द्वारा अपेक्षित वस्तुओं की आपूर्ति विश्वविद्य ालय के विभिन्न विक्रयकर्ताओं/आपूर्तिकर्ताओं द्वारा की गयी थी। प्रार्थी के

विश्वविद्यालय के कुलसचिव के पद पर रहते हुये किसी भी समय उसे विभिन्न वस्तुओं/उपकरणों की खरीद–फरोख्त का कार्य किसी भी प्रकार से नहीं सौंपा गया था। निर्धारित नियमों यानि उत्तराखण्ड अधिप्राप्ति नियमावली, 2008 के अन्तर्गत किसी भी वस्तु के क्रय हेतु प्रक्रिया निर्धारित की गयी है।

7. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी कथन किया गया कि अनुबंध के बिल भुगतान का मामला वित्त नियंत्रक और विक्रेताओं के मध्य था। वित्त नियंत्रक, जो विश्वविद्यालय के आहरण संवितरण अधिकारी थे, ने कुलपति के अनुमोदन/निर्देश के अनुसार विक्रेताओं को अनुबंध के सभी बिलों का भुगतान जारी किया था। अतः, वे विश्वविद्यालय के सभी वित्तीय कार्यों के लिए उत्तरदायी थे। प्रार्थी ने किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं किया था। अधिनियम, 1988 की धारा 17ए के आलोक में प्रथम सूचना दर्ज करने से पूर्व कोई विधिक संस्तुति नहीं की गयी।

8. राज्य के विद्वान ब्रीफ होल्डर श्री पी.एस. उनियाल ने प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों का विरोध किया।

9. संहिता की धारा 482 में तीन परिस्थितयों की परिकल्पना की गयी है जिनमें अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात्, ''संहिता के तहत एक आदेश को प्रभावी बनाने के लिए, या किसी भी न्यायालय की आदेशिका के दुरूपयोग को रोकने के लिए, या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित रखने के लिए संहिता की धारा 482 इस प्रकार हैः ''उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों को बचानाः– इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अन्तर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जायेगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग निवारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो।''

10. यह अन्तर्निहित अधिकार क्षेत्र व्यापक होने के पश्चात् भी मनमाने या निरंकुश ढंग से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए उचित मामलों में इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। इस धारा के अन्तर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय यह न्यायालय बतौर अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय का कार्य नहीं करता। अतः साक्ष्य का आंकलन कर आरोप–पत्र को रद्द करना या संज्ञान आदेश को अपास्त करना उचित नहीं है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में संहिता की धारा 482 के विस्तार पर विचार किया गया है।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मधु लिमया बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1978, ए.आई.आर 47,** में अभिनिर्धारित किया गया है कि निम्नलिखित सिद्धांत न्यायालय की अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करेंगे– (1) यदि व्यथित पक्ष की शिकायतों के निवारण के लिए संहिता में विशिष्ट उपबंध है तो शक्ति का सहारा नहीं लिया जा सकता है। (2) इसका प्रयोग किसी भी न्यायालय की आदेशिका के दुरूपयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए। (3) इसका प्रयोग संहिता के किसी अन्य उपबंध में उत्कीर्ण विधि के स्पष्ट अवरोधक के विरूद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

13. **पेप्सी फूड लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य, 1998 (36) ए.सी.सी. 20** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत कोई सीमा नहीं है, किन्तु इन शक्तियों को लागू करने में अधिक सर्तकता और सावधनी बरतने की आवश्यकता है।

14. **ली कुन ही और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, जे.टी. 2012 (2) एस.सी. 237,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय संहिता की धारा 482 के अधीन अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आरोपों की सच्चाई या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, यदि कोई हो, का मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

15. **शकसन बेल्थिसर बनाम केरल राज्य और एक अन्य (2009) 14 ए.सी.सी 466** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि,

''सीआरपीसी की धारा 482 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट और आरोप–पत्र को अपास्त करने का दायरा और शक्ति सुस्थापित है। उक्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा विधि और न्यायालय की आदेशिका के दुरूपयोग को रोकने के लिए किया जाता है, किन्तु ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है, जब शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत या पुलिस द्वारा दायर आरोप–पत्र में किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया हो या जब उक्त शिकायत तुच्छ परेशान करने वाली या दमनकारी पाई गयी हो। उपरोक्त मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा कई निर्णय दिए गए हैं जिसमें शिकायत को रद्द करने से सम्बन्धित कानून को संक्षिप्त रूप से निर्धारित किया गया है।''

16. **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992) एसयूपीपी (1) एससीसी 335**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है

कि, '' (1) प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाये गये आरोप, भले ही उन्हें अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता स्वीकार की गयी हो, प्रथमदृष्ट्या किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के विरूद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्रियों में आरोप, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155 (2) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के आदेश के अतिरिक्त संहिता की धारा 156 (1) के अन्तर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं।

(3) जहां एफ.आई.आर या शिकायत में लगाये गये अनियंत्रित आरोप और उसके समर्थन में एकत्रित किये गये साक्ष्य किसी भी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, बल्कि केवल एक ऐसे असंज्ञेय अपराध का गठन करते हैं जिसका पुलिस द्व ारा अन्वेषण केवल संहिता की धारा 155 (2) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट की अनुमति से ही किया जा सकता हो।

(5) जहां एफ.आई.आर या शिकायत में लगाये गये आरोप इतने हास्यास्पद तर्क और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या सम्बन्धित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गयी है) के किसी भी प्रावधान में संस्थापन और कार्यवाही जारी रखने के लिए एक स्पष्ट कानूनी बाधा है और/या जहां संहिता या सम्बन्धित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो व्यथित पक्ष की कष्ट के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावपूर्ण रूप से अभियुक्त से बदला लेने के उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसका बचाव करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

17. **'मैसर्स निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राईवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य', 2021 एससीसी ऑनलाईन एससी 315,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया हैः–

''10. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से, ख्वाजा नजीर अहमद (उपर्युक्त) के मामले में प्रिवी काउंसिल के निर्णय से ही, विधि के निम्नलिखित सिद्धांत प्रकट होते हैं:–

(i) पुलिस के पास दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV में निहित सुसंगत प्रावधानों के अन्तर्गत संज्ञेय अपराधों में अन्वेषण करने के अधिकार और कर्तव्य हैं;

(ii) न्यायालय संज्ञेय अपराधों के अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करेगा;

(iii) यद्यपि ऐसे मामलों में जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी संज्ञेय अपराध या किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया गया है, न्यायालय अन्वेषण जारी रखने की अनुमति नहीं देगा;

(iv) अपास्त करने की शक्ति का उपयोग 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों में सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। (धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत रद्द करने के लिए अपने आवेदन में दुर्लभतम मामलों में मानक, उस मानक के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए जिसे मृत्युदंड के संदर्भ में तैयार किया गया है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पहले बताया गया है।);

(v) एक एफ.आई.आर/शिकायत की जांच करते समय, जिस अपास्त करने की मांग की जाती है, न्यायालय एफ.आई.आर/शिकायत में अधिरोपित आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में जांच शुरू नहीं कर सकती है;

(vi) आपराधिक कार्यवाही को प्रारंभिक चरण में बाधित नहीं किया जाना चाहिए;

(vii) शिकायत/एफ.आई.आर को अपास्त करना एक सामान्य नियम की तुलना में एक अपवाद और दुर्लभता होनी चाहिए;

(viii) सामान्यतः, न्यायालय को पुलिस के अधिकार क्षेत्र को हड़पने से वर्जित किया जाता है, क्योंकि राज्य के दो अंग दो विशिष्ट क्षेत्र की गतिविधियों को संचालित करते हैं और एक को दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए; यद्यपि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति को न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित तथा प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए मान्य है।

(ix) न्यायपालिका और पुलिस के कार्य एक दूसरे के पूरक हैं, न कि परस्पर व्यापक हैं।

(x) असाधारण मामलों को छोड़कर जहां गैर–हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता होगी, न्यायालय और न्यायिक प्रक्रिया को अन्वेषण के स्तर पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(xi) न्यायालय की असाधारण और अर्न्तनिहित शक्तियां न्यायालय को अपनी सनक या मौज के अनुसार कार्य करने के लिए मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं;

(xii) प्रथम सूचना रिपोर्ट एक विश्वकोष नहीं है जिसे रिपोर्ट किये गये अपराधों से सम्बन्धित सभी तथ्यों और विवरणों का खुलासा करना चाहिए। इसीलिए जब पुलिस द्वारा अन्वेषण प्रचलित हो, न्यायालय एफ.आई.आर में वर्णित आरोपों के गुण–दोष में नहीं जाना चाहिए। पुलिस को अन्वेषण पूरी करने की अनुमति दी जानी चाहिए। अस्पष्ट तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि शिकायत/एफआईआर अन्वेषण के योग्य नहीं है या यह विधि की प्रक्रिया का दुरूपयोग है। अन्वेषण के दौरान या उसके बाद, यदि अन्वेषणकर्ता अधिकारी को पता चलता है कि शिकायतकर्ता द्वारा किये गये आवेदन में कोई सार नहीं है, तो अन्वेषणकर्ता अधिकारी विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक उचित रिपोर्ट/सारांश दाखिल कर सकता है जिस पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा ज्ञात प्रक्रिया के अनुसार विचार किया जा सकता है;

(xiii) धारा 482 सीआरपीसी में निहित शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता हेतु न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह न्यायालय का एक भारयुक्त व परिश्रमी कर्तव्य है।

(xiv) हालांकि, यदि एक समय पर, न्यायालय को यदि वह उचित समझे तो, अपास्त किये जाने के मापदण्ड एवं विधि द्वारा अधिरोपित आत्म–संयम व विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा आर.पी.कपूर (उपरोक्त) व भजन लाल (उपरोक्त) के वादों में निर्धारित मापदंड को ध्यान में रखते हुये, एफ.आई.आर/शिकायत को अपास्त करने का क्षेत्राधिकार है।

(xv) जब कथित आरोपी द्वारा एफ.आई.आर को अपास्त करने का अनुरोध अभिकथित है, तो न्यायालय जब धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग करती है, तो केवल इस बात पर विचार करना होता है कि क्या एफ. आई.आर में आरोप एक संज्ञेय अपराध के कारित होने का खुलासा करते हैं या नहीं और योग्यता के आधार पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या आरोप एक संज्ञेय अपराध बनाते हैं या नहीं और न्यायालय अन्वेषणकर्ता एजेंसी/पुलिस को एफ.आई. आर में आरोपों के अन्वेषण करने की अनुमति देनी होगी।

''23. उपरोक्त वर्णित कारणों के आलोक में मुख्य/मूल बिन्दु पर हमारा अंतिम निष्कर्ष यह है कि क्या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा सी.आर.पी.सी की धारा 482 के अन्तर्गत विचाराधीन अपास्तीकरण याचिका में अन्वेषण को स्थगित किये जाने हेतु अथवा ''कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाये जायेंगे'' का अंतरिम आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया जाना न्यायोचित होगा तथा वो क्या परिस्थितियां होगी जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा सी.आर.पी.सी की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुये, दाण्डिक कार्यवाही/शिकायत/एफ.आई.आर की अपास्तीकरण याचिका कोखारिज/निस्तारित करने हेतु अभियुक्त को गिरफ्तार न किये जाने या सी.आर.पी.सी की धारा 173 के अन्तर्गत आख्या/आरोप–पत्र दायर करने, या अन्वेषण के दौरान ''कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाये जायेंगे'' का आदेश पारित किया जाना न्यायसंगत नहीं होगा, हमारे अंतिम निष्कर्ष निम्नानुसार हैंः–

(i) पुलिस के पास दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV में निहित सुसंगत प्रावधानों के अन्तर्गत संज्ञेय अपराधों में अन्वेषण करने के अधिकार और कर्तव्य हैं;

(ii) न्यायालय संज्ञेय अपराधों के अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करेगा;

(iii) यद्यपि ऐसे मामलों में जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी संज्ञेय अपराध या किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं किया गया है, न्यायालय अन्वेषण जारी रखने की अनुमति नहीं देगा;

(iv) अपास्त करने की शक्ति का उपयोग 'दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों' में सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। (धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत रद्द करने के लिए अपने आवेदन में दुर्लभतम मामलों में मानक, उस मानक के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए जिसे मृत्युदंड के संदर्भ में तैयार किया गया है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पहले स्पष्ट किया गया है।);

(v) एक एफ.आई.आर/शिकायत की जांच करते समय, जिसे अपास्त करने की मांग की जाती है, न्यायालय एफ.आई.आर/शिकायत में अधिरोपित आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में जांच शुरू नहीं कर सकती है;

(vi) आपराधिक कार्यवाही को प्रारंभिक चरण में बाधित नहीं किया जाना चाहिए;

(vii) शिकायत/एफ.आई.आर को अपास्त करना एक सामान्य नियम की तुलना में एक अपवाद और दुर्लभता होनी चाहिए;

(vii) सामान्यतः, न्यायालय को पुलिस के अधिकार क्षेत्र को हड़पने से वर्जित किया जाता है, क्योंकि राज्य के दो अंग दो विशिष्ट क्षेत्र की गतिविधियों को संचालित करते हैं और एक को दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए; यद्यपि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति को न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित तथा प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए मान्य है।

(ix) न्यायपालिका और पुलिस के कार्य एक दूसरे के पूरक हैं, न कि परस्पर व्यापक हैं।

(x) असाधारण मामलों को छोड़कर जहां गैर–हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता होगी, न्यायालय और न्यायिक प्रक्रिया को अन्वेषण के स्तर पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(xi) न्यायालय की असाधारण और अन्तर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी सनक या मौज के अनुसार कार्य करने के लिए मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं;

(xii) प्रथम सूचना रिपोर्ट एक विश्वकोष नहीं है जिसे रिपोर्ट किये गये अपराधों से सम्बन्धित सभी तथ्यों और विवरणों का खुलासा करना चाहिए। इसीलिए जब पुलिस द्वारा अन्वेषण प्रचलित हो, न्यायालय एफ.आई.आर में वर्णित आरोपों के गुण–दोष में नहीं जाना चाहिए। पुलिस को अन्वेषण पूरी करने की अनुमति दी जानी चाहिए। अस्पष्ट तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि शिकायत/एफआईआर अन्वेषण के योग्य नहीं है या यह विधि की प्रक्रिया का दुरूपयोग है। अन्वेषण के दौरान या उसके बाद, यदि अन्वेषणकर्ता अधिकारी को पता चलता है कि शिकायतकर्ता द्वारा किये गये आवेदन में कोई सार नहीं है, तो अन्वेषणकर्ता अधिकारी विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक उचित रिपोर्ट/सारांश दाखिल कर सकता है जिस पर विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा ज्ञात प्रक्रिया के अनुसार विचार किया जा सकता है;

(xii) धारा 482 सीआरपीसी में निहित शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता हेतु न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह न्यायालय का एक भारयुक्त व परिश्रमी कर्तव्य है।

(xiv) हालांकि, यदि एक समय पर, न्यायालय को यदि वह उचित समझे तो, अपास्त किये जाने के मापदण्ड एवं विधि द्वारा अधिरोपित आत्म–संयम व विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा आर.पी.कपूर (उपरोक्त) व

भजन लाल (उपरोक्त) के वादों में निर्धारित मापदंड को ध्यान में रखते हुये, एफ.आई.आर/शिकायत को अपास्त करने का क्षेत्राधिकार है।

(xv) जब कथित आरोपी द्वारा एफ.आई.आर को अपास्त करने का अनुरोध अभिकथित है, तो न्यायालय जब धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग करती है, तो केवल इस बात पर विचार करना होता है कि क्या एफ. आई.आर में आरोप एक संज्ञेय अपराध के कारित होने का खुलासा करते हैं या नहीं और योग्यता के आधार पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या आरोप एक संज्ञेय अपराध बनाते हैं या नहीं और न्यायालय अन्वेषणकर्ता एजेंसी/पुलिस को एफ.आई.आर में आरोपों के अन्वेषण करने की अनुमति देनी होगी।

(xvi) धारा 482 दं.प्र.सं. अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत शक्तियों के प्रयोग में एक अपास्तीकरण में अंतरिम आदेश पारित करते समय उपरोक्त पैरामीटर लागू होंगे और/या उपरोक्त पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। हालांकि, रद्द करने की याचिका विचाराधीन रहने के दौरान जांच पर रोक लगाने का अंतरिम आदेश सावधानी के साथ पारित किया जा सकता है। इस तरह के अंतरिम आदेश को नियमित रूप से, आकस्मिक रूप से और/या यांत्रिक रूप से पारित करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। सामान्यतः, जब जांच प्रगति पर है और तथ्य अस्पष्ट हैं और पूरे साक्ष्य/सामग्री उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं है, तो उच्च न्यायालय को गिरफ्तार नहीं करने या ''कोई दण्डात्मक कदम नहीं उठाने'' के अंतरिम आदेश पारित करने से स्वयं को रोकना चाहिए और

आरोपी को सक्षम न्यायालय के समक्ष धारा 438 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। सी. आर.पी.सी की धारा 482 अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत अपास्तीकरण याचिका को खारिज/निस्तारित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा दौराने अन्वेषण या अन्वेषण पूर्ण होने से सी.आर.पी.सी की धारा 173 के अन्तर्गत आख्या/आरोप–पत्र दायर करने अथवा ''कोई दण्डात्मक कदम न उठाने'' का आदेश पारित किया जाना न्यायसंगत नहीं होगा।

(xvii) सी.आर.पी.सी की धारा 482 अथवा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग करते हुये, उपरोक्त निर्दिष्ट मापदण्ड पर विचार करने के उपरांत उच्च न्यायालय का यह प्रथम दृष्ट्या मत हो कि अग्रिम अन्वेषण को अंतरिम रूप से स्थगित करने हेतु असाधारण मामला बनता है, तब भी उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण देने होंगे कि ऐसा अंतरिम आदेश

आवश्यक क्यों है अथवा अंतरिम आदेश पारित करने की क्या आवश्यकता है जिससे न्यायालय द्वारा बौद्धिक प्रयोजना को प्रदर्शित किया जा सके और उच्च मंच इस बात पर विचार कर सके कि ऐसा अंतरिम आदेश पारित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा किस बात पर विचार किया गया था।

(xviii) जब भी उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त मापदंडों के भीतर ''कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाये जाने'' का अंतरिम आदेश पारित किया जाता है, तो उच्च न्यायालय को यह स्पष्ट करना चाहिए कि ''कोई दण्डात्मक कदम नहीं उठाये जाने'' का क्या अर्थ है क्योंकि ''कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाये जाने'' शब्द को बहुत अस्पष्ट और/या व्यापक कहा जा सकता है जिसे गलत समझा जा सकता है और/या गलत तरीके से लागू किया जा सकता है।''

18. **कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाईन एससी 580** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भजन लाल (उपरोक्त) के निर्णयों पर विचार करने के बाद **धुरूवरम मुरलीधर सोनार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 18 एससीसी 191** के मामले में यह माना जाता है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुये कार्यवाही को अपास्त करना एक अपवाद है न कि एक नियम। यह भी देखा गया है कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत निहित अधिकार क्षेत्र हालांकि व्यापक है, फिर भी उसका प्रयोग संयम, सावधानी और सचेतना के साथ किया जाना चाहिए, केवल तभी जब इस तरह के अभ्यास को विशेष रूप से धारा में निर्धारत परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है। आगे यह भी देखा गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों के प्रयोग में कार्यवाही को अपास्त करने के स्तर पर साक्ष्य के आंकलन की अनुमति नहीं है। सी.बी.आई बनाम अरविन्द खन्ना (2019) 10 एससीसी 686, तेलंगाना बनाम मनगीपेट (2019) 19 एससीसी 87 और एक्सवाईजेड बनाम गुजरात राज्य (2019) 10 एससीसी 337 के प्रकरण में भी समान विचार व्यक्त किये गये हैं।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **निरंजन हेम चन्द्रा सशितल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 4 एससीसी 642** में कहा गया है कि भ्रष्टाचार को डिग्री के आधार पर नहीं आंका जाना चाहिए, क्योंकि भ्रष्टाचार विकार को स्थान देता है, सामाजिक इच्छाशक्ति को नष्ट कर देता है, अवांछित महत्वाकांक्षाओं को गति देता है, विवेक को मार देता है, संस्थानों के गौरव को नष्ट कर देता है, देश के आर्थिक स्वास्थ्य को शक्तिहीन बना देता है, सभ्यता की भावना को नष्ट कर देता है और शासन के सार को नष्ट कर देता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि धन का अनैतिक

अधिग्रहण ईमानदारी में विश्वास करने वाले लोगों की ऊर्जा को नष्ट कर देता है, और इतिहास की पीड़ा के साथ उनकी व्यथा दर्ज करता है और एकमात्र राहत देने वाला तथ्य यह है कि सामूहिक संवेदनशीलता इस तरह की पीड़ा का सम्मान करती है क्योंकि यह संवैधानिक नैतिकता के अनुरूप है। डिग्री से भिन्न, हर प्रकार के भ्रष्टाचार के प्रति असहिष्णुता पर जोर दिया गया है।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **सुब्रमण्यम स्वामी बनाम सी.बी.आई, (2014) 8 एससीसी 682,** में कहा गया कि भ्रष्टाचार राष्ट्र का शत्रु है और भ्रष्ट लोक सेवकों का पता लगाना और ऐसे व्यक्तियों को दण्डित करना 1988 के अधिनियम का एक आवश्यक अधिदेश है।

21. प्रस्तुत प्रकरण में, विद्वान विशेष न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात संज्ञान लिया गया। उक्त आरोपों का परीक्षण केवल विचारण के समय किया जाना आवश्यक है। यह न्यायालय संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत किसी आवेदन में समानांतर विचारण नहीं कर सकता है। यह सुस्थापित है कि संज्ञान और समन के लिए प्रकरण पर विचार करते समय, प्रकरण के गुण–दोष का परीक्षण नहीं किया जा सकता है और इस न्यायालय के लिए आरोपों की शुद्धता को निर्णित करने के लिए तथ्यात्मक क्षेत्र में प्रवेश करना पूर्ण रूप से अस्वीकार्य है। यह न्यायालय आरोपों की वास्तविकता की भी जांच नहीं करेगा क्योंकि यह न्यायालय संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुये अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। इस प्रकरण में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रार्थी के विरूद्ध कोई आरोप नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता इस स्तर पर यह दर्शित करने में असमर्थ हैं कि आरोप इतने हास्यास्पद तर्क और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि प्रार्थी के विरूद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

22. अतः इस प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में, प्रस्तुत प्रकरण माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी श्रेणी में नहीं आता है। तदनुसार, आरोप–पत्र को अपास्त करने और पूरी कार्यवाही के साथ संज्ञान आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

23. चूंकि, मामले का विचारण किया जाना है, इसीलिए मैं यह स्पष्ट करता हूं कि पहले की गई टिप्पणियां केवल संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत

प्रस्तुत इस आवेदन के निपटारे के लिए हैं। ये टिप्पणियां मामले का निर्णय लेते समय विचारण न्यायालय को प्रभावित नहीं करेंगी।

24. उपरोक्त निर्देशों के साथ, संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को खारिज किया जाता है।

दिनांकः 03 फरवरी 2022

जेकेज/पंत

—————————————

आलोक कुमार वर्मा, जे.

(अवकाश न्यायाधीश)